ÙÇä 15

प्रकट अनुभूति के ज्ञानसूत्र

श्रेणी १५

१

‘शब्द’ - यह जड़ व चेतन के बीच एक ऐसा ‘पावरफुल’ Agent है, जो दोनों को ही गुमराह कर देता है।

२

पुद्गल स्वभाव से सक्रिय होने के बाद भी, स्वभाव से Re-active नहीं, परंतु विभाविक Interferance (डबल) से ही Re-active होता है।

३

‘दिव्य चक्षु’ का वेदना - यह प्रकाश है, तथा यह ‘सम’ भी है। ‘सम’ प्रकाश कैसा होता है ? ‘प्रकाश’ उसे कहते हैं, जो ‘दृष्टि’ के रूप में होता है तथा ये वेदन की अनुभूति तो कराता ही है, लेकिन यह निर्भर करता है कि आपकी दृष्टि कैसी है !

४

‘दिव्यदृष्टि’ कैसी होती है ?.... एक ही स्वभाव युक्त अर्थात् सबकुछ एक देखने वाली। दूसरा कुछ दिखता ही नहीं। स्वयं का भी एक ही स्वभाव और स्वयं ‘अपने’ स्वभाव से ही जो सबमें ‘अपने’ ही स्वभाव को देखे।

५

‘दिव्यदृष्टि’ स्वयं एक स्वभाव की होती है, यह ‘एकत्व’ को ही देखती

है, अर्थात् 'शुद्धात्मा' को ही देखती है। शरीर चाहे अलग हों, लेकिन सबमें एक ही 'शुद्धात्मा' का दर्शन करे। क्योंकि उसका स्वभाव एक होता है। इसे 'दृष्टि प्रताप' कहते हैं।

६

'निश्चय' एक और अनन्य होता है। अर्थात् अनेक प्रकार का व्यवहार होने के बावजूद भी इस व्यवहार में 'निश्चय' एक और अनन्य ही होता है; अर्थात् 'व्यवहार' में कभी भी अनेकता दृष्टिगोचर नहीं होती, न ही इसका आभास होता है। इसी व्यवहार को भगवान ने 'व्यवहार' कहा।

७

मूल भ्रांत 'मान्यता' 'फ्रैक्चर' होने के साथ ही 'आरंभ' से मुक्ति हो जाती है।

८

'ज्ञान' को समझना हो तो, सिर्फ 'बोली' ('शब्द') के प्रतिक्रमण होने चाहिए।

९

प्रत्येक आत्मा का एक 'Reserved plot' होता है। इस 'Plot' में, इसका Reservation नहीं होता और यहाँ यह स्वयं Total (संपूर्ण) एवं स्थायी, Independent, परमानंद स्वरूप, Total blissfullness से Perpetually तरीके से, 'वह' जो Existential state हैं उसमें 'स्वयं' के तरीके से नहीं हो सकता ! इस सत्य में बहुत गहरा मर्म है।

१०

Account (हिसाब) उसे कहते हैं, जो Subject to accountability हो, लेन-देन वाला हो।

११

कोई भी Incident या Happening बिना किसी कारण नहीं होता।

१२

'विज्ञान' वही है, जो हमें सदा इस 'विज्ञान' से Livelife में Livingwise anything as it is रूप में समझ आए, यदि हमारे पास यह 'Vision' या दृष्टि है, ऐसा 'ज्ञान' है, तभी यह संभव है।

१३

Ultimate meaning of Science is to know and see the things as they are : anything that may be live or non-live.

१४

'Centre' - यह सेंटर ही है। 'Circle' - यह सर्कल ही है ! कभी भी 'सेंटर' न तो 'सर्कल' की जगह ले सकता है, न ही 'सर्कल' सेंटर की, फिर भी दोनों साथ-साथ ही होते हैं। फिर भी दोनों Independent होते हैं। अन्यथा 'सर्कल' कभी भी सुंदर नहीं लगेगा। 'Centre' है, इसलिए तो 'Circle' सुंदर है !

१५

You cannot find centre without a circle nor a circle without a centre.

१६

Life is nothing but all happenings, whether you are asleep or awake.

१७

जो स्थायी है, Prepetual है, Permanent है, अपना स्वभाव जो कभी न छोड़े, ऐसा स्वभाव सदा साथ रहे, तभी यह 'वस्तु' कहलाती है, अन्यथा नहीं।

१८

'ज्ञान' कुछ और नहीं, परंतु 'आत्मा' का ही स्वरूप है।

१९

'शांत' शब्द तो आत्मा पर लागू होता है, शरीर के किसी भी Function या Part पर लागू नहीं होता, यह Singular 'रस' है।

२०

'दर्शन' प्रगट होता है, तभी 'ज्ञान प्रकाश' उजागर होता है और तभी 'शांत परिणाम' की अनुभूति होती है।

२१

'शांत' - एक प्रकार का 'रस' है, अनुभूति है ! यह 'Physical' रस नहीं। संसार की अन्य किसी बात का रस नहीं, परंतु फिर भी यह पूर्ण रूप से 'आत्मा' पर प्रत्यक्ष रूप से लागू नहीं होता। यह एक परिणाम है। शमन होने वाले पुरुषार्थ के परिणामस्वरूप उत्पन्न होने वाली परिस्थिति है।

२२

'भगवत गुण' अर्थात् व्यवहार में दिव्यता पैदा करने वाले आंतरिक गुण!

२३

'व्यवहार' में 'लघुता' आती जाए इसके लिए शक्ति की प्रार्थना जरूरी है।

'शुद्धात्मा' तो अनंत शक्ति का स्वामी है, परंतु यह गुरु स्वभाव कब प्रकट हो ! यह गुरु स्वभाव प्रकट कब हो ? व्यवहार की दृष्टि का जो 'गुरु' भाव दबा हुआ है, वह 'गुरुभाव' जैसे-जैसे 'लघु' भाव में बदलेगा, वैसे-वैसे हमारे स्वभाव का 'गुरु भाव' व्यक्त होता जाएगा। यही नियम है !

२४

हम मुंह से बोलकर 'प्रार्थना' चाहे भले न करें, परंतु हृदय से कहते रहें कि 'दादा' शक्ति आपकी है ! इससे हमारा 'कर्त्ता' भाव कम होता जाएगा और 'रिलेटिव व्यू पॉइंट' लघु होता जाएगा। अर्थात् भीतर 'लघुता' भाव के आते ही दृष्टि में हमें अपनी 'भूल' दिखाई देने का 'स्कोप' मिल जाता है। रास्ता खुल जाता है और बाहर किसी के भी दबे हुए 'गुण' दिखाई देने लगते हैं।

२५

'भक्ति' का अर्थ है हमारे भीतर मौजूद भगवान की आराधना। भगवान के साथ एकनिष्ठ हो जाना, एक हो जाना।

२६

'ज्ञान' का अर्थ है भगवान का परमात्म प्रकाश, शिवप्रकाश !

२७

जन्म लेना 'अवतार' नहीं कहलाता, परंतु जिस देह में 'ज्ञान-प्रकाश' पैदा हो जाए, वह देह 'अवतारी देह' या 'दिव्य देह' कहलाता है।

२८

'ज्ञान' ज्ञानी में ही होता है ! यही सनातन सिद्धांत है।

२९

जिसकी भटकन समाप्त हो जाए, जिसे स्वयं का ठिकाना मिल जाए, वही 'स्व-आश्रयी' कहलाता है। परंतु 'स्वरूपज्ञान दृष्टि' बिना ऐसा होना संभव नहीं।

३०

संयम का अर्थ क्या है ? 'मन' के स्वामित्व से मुक्त होना ही 'संयम' है। यही ज्ञान दृष्टि 'स्वरुप ज्ञान' से प्राप्त होती है।

३१

'आध्यात्म भाषा' में मन के साथ तन्मय स्थिति हो जाए, यही संसार कहलाता है।

३२

'संयम' तो ज्ञान प्राप्ति का परिणाम है।

३३

'स्वभाव' में अपनी दिव्य दृष्टि से स्वयं 'स्व-पुरुषार्थ' की स्थिति हो जाए, तो यह 'चारित्र्य' कहलाता है।

३४

भगवान को यह श्वास नहीं होते। वह तो दो 'फोर्स', 'देखने' और 'जानने' से चलता रहता हैं, ये तो सबके साथ हो सकता है। लेकिन ऐसा तभी होता है जब 'समय' आए और 'पुण्य' फले।

३५

'ज्ञान' हृदयमार्गी होता है।

३६

मोक्षमार्ग दो अक्षरों का है : 'आज्ञा'।

३७

'फाइल' अर्थात् सम्पूर्ण रूप से 'स्वामित्व' भाव से मुक्ति !

३८

'समभाव से निपटारा' ही सबसे उत्कृष्ट तप है, इसमें ही सम्पूर्ण त्यागमार्ग समाविष्ट है।

३९

''ज्ञानी'' पद ही परमात्मा का प्रकट धारकपद है।

४०

यदि परमात्मा का दर्शन प्रकटस्वरूप में होना है तो 'ज्ञानी' स्वरुप में ही होता है।

४१

'सर्वज्ञता' का प्रकाश, जिस शरीर में 'पूनम' स्वरुप प्रगट हो जाए, तभी यह 'सर्वज्ञता' का प्रकाश 'देहधारी परमात्मा' स्वरुप बन सकता है, अन्यथा नहीं। और तभी यह 'देहधारी परमात्मा' स्वरुप में सर्वज्ञ सदेह हो - यही पूनम या पूर्णिमा है।

४२

मनुष्य जन्म प्राप्त हुआ है 'मोक्ष' प्राप्ति के लिए। अब 'मोक्ष' प्राप्त करना अर्थात् क्या ? यह शरीर में सशरीर 'मोक्ष सुख' का स्वाद चख लेने जैसा है। इसे अनुभव किया जा सकता है।

४३

'सर्वज्ञता' अर्थात् हमारा आत्मा का 'देखने-जानने का जिज्ञासु स्वभाव'; यह 'देखने' की क्रिया वाला और 'जानने' की क्रिया वाला प्रकाश स्वभाव है। यह स्वभाव 'व्यक्त' होता है और इसे प्रकट करते हैं 'सर्वज्ञ पुरुष' !

४४

'जय सच्चिदानंद' तो हमारा अपना ही स्वरूप है और यही सनातन धर्म स्वरूप है।

४५

'दृष्टांत स्वरूप' में जो 'उपस्थित' है, वही व्यक्त स्वरूप, दृष्टांत स्वरूप हो सकते है, अन्य कोई नहीं।

४६

कृपालु देव कहते हैं कि निरंतर उपयोग में रहने वाले 'ज्ञानी-पुरुष' भी इस युग में निरंतर 'सत्संग' के लिए अधीर रहते हैं क्योंकि इस युग में यह उपयोग, इस काल के परिबलों में, कभी भी हमारा उपयोग अनावकाश न होने पाए, यह बहुत आवश्यक है, ऐसा ढंग से रहता नहीं न!

४७

'विज्ञान' को जानने के लिए 'सत्संग' आवश्यक है।

४८

'काम निकाल लेना' अर्थात् 'विज्ञान' को समझ लेना है। हममें 'समझ' जितनी 'फिट' होती जाएगी, उसी प्रमाण में हमारे मन, वचन और शरीर के संदर्भ में (Context में), हमें ''आज्ञा'' समझ में आती जाएगी।

४९

'रियल व्यू पॉइंट' (दिव्यचक्षु) प्राप्त हो जाए और 'प्रज्ञा' उजागर हो जाए, तभी 'रिलेटिव व्यू पॉइंट' की ''ज्ञानी'' द्वारा आज्ञा मिलती है, अन्यथा 'रिलेटिव व्यू पॉइंट' आज्ञास्वरूप हो ही नहीं सकता।

५०

मोक्षमार्ग - यह 'व्यवहार' एवं 'निश्चय' दोनों के ही साथ होता है सदैव। यह कब होता है ?..... निश्चय जब सजीवनमूर्ति स्वरूप जैसे व्यवहारस्वरूप में, मूल उपादान स्वरूप में आपके सामने उपस्थित हो जाए तभी यह आपका काम करेगा, अन्यथा नहीं।

५१

धर्म यदि हमारी सहायता न कर पाए तो वह धर्म किस काम का ?

५२

'संयम परिणाम' संपूर्ण उत्तरदायित्व के साथ होता है, फिर भी इस संसार में जो बोझस्वरूप जाना जाता है, इस तरह बोझपूर्ण उत्तरदायित्व न हो, तो इसके जैसा ज़िम्मेदार, अन्य कोई व्यक्ति नहीं हो सकता, क्योंकि कुदरत का और उसका नाता एक हो गया है।

५३

ॐ - मुक्ति का प्रारंभ भी यही है और 'सिद्धत्व' की शुरुआत भी यही है।

५४

'सहजभाव' अर्थात् स्वयं के स्वभाव से सहज प्रवाह में प्रवाहित होना।

५५

'सहज' शब्द यह अपने मूल स्वभाव से आत्मा पर लागू होता है। यह 'आत्मा' का स्वभाव है। यह परमात्म स्वभाव है।

५६

प्रकृति की क्रिया करने वाला आत्मा नहीं है।

५७

दिव्यचक्षु ही दिव्य ज्ञान की जननी है।

५८

'दिव्यचक्षु' अर्थात् ज्ञान से अलग होने वाली ज्ञान प्रकाश की किरण। इस अलग होने वाली ज्ञान किरण के कारण ही उसे ज्ञात होता है कि मैं भी अपने 'मैं' भाव से विलग हो गया हूँ, वास्तव में, मैं 'देखने' लगा हूं और 'देखने' से उसकी यह 'देखने' की शक्ति विकसित होती जाती है। 'ज्ञान' विकसित होता जाता है, अर्थात् ज्ञान दिव्य स्वरुप में प्रकट होता जाता है।

५९

'ज्ञानी' मन, वचन और काया के, किसी भी व्यवहार में, किसी भी जगह क्रिया के भाग में शामिल नहीं होते। क्रिया की यह पुद्गल धारा पूर्ण रूप से अलग होती है और स्वयं की ज्ञानधारा, चेतनधारा, पूरी तरह अलग होती है। इसीलिए कहते हैं कि 'ज्ञानी' का हर कर्म दिव्य होता है !

६०

इस कलियुगी संसार में, समाज में हमें अपनी भावुकता के कारण ही पिटाई होती हैं !

६१

भगवान से संबंधित तथा भगवान की पहचान के लिए सभी बातें सीधी, सरल रीति से समझ में आ सकती हैं, जो हमें रोज़ाना जीवन में उपयोगी होती हैं। इसे वास्तव में 'सतसंगसभा' कहते हैं; ''ज्ञानी-पुरुष'' की उपस्थिति में ही यह संभव है।

६२

स्व-स्वभाव क्रिया से महात्मा का 'आज्ञाधर्म' में रहना ही 'तप' कहलाता है।

६३

'नव-कलम' से स्वयं का सम्पूर्ण वर्तमान जीवन सुरक्षित रहता है। 'चंचल' स्वभाव संयम में आ जाता है। नवशक्ति का संचार होता है।

६४

'रिलेटिव' तथा 'रियल' दोनों ही अपने Independence में 'Independent' हो जाएं, यही समभाव है। यही Base है, सम्पूर्ण 'समभाव से निपटारे'।

६५

'दादा' कहते हैं कि अब अपना स्वाद ऐसा स्थिर बनाओ कि आज्ञा की यह परोक्ष-आज्ञा मिली है, ऐसा भीतर से प्रतीत होने लगे। आप आज्ञाधीन भाव से, भीतरी परिणाम से स्वभाव में ऐसे स्थिर हो जाएं कि आज्ञाधीन भावना स्थिर हो जाए। शेष प्रकृति ही रहे। यह एक बहुत ही अलौकिक सुख की स्थिति है।

६६

जाग्रति के लिए क्या करें ? 'निश्चय' दृढ़ बनाएं। दृढ़ निश्चय के साथ

'लघु' भाव से शक्ति मांगें। निश्चय रखने वाला आज 'बावा' के भाग में होता है। और 'बावा' का भाग, तथा 'एक नंबर की फ़ाइल' दोनों का निकट संबंध है।

६७

हमारा निरंतर और अखंड रूप से शुद्धात्मा का रटन ही अंतिम निदिध्यासन है। प्रकट का आधार अर्थात् शुद्धात्मा है, जो स्वभाव से सहज है तथा प्रकट ''ज्ञानी'', जो हमारे पास 'साहजिकता' की सजीवन मूर्ति है, अर्थात् 'सजीवन मूर्ति का निदिध्यासन' ही शुद्धात्मा का निदिध्यासन है।

६८

'Centre' (शुद्धात्मा) तथा File No. 1 (देह) के साथ यदि वास्तव में Relation realise हो जाए और Establish हो जाए तो यही Relation सच्चा Relation है।

६९

'निश्चितता' की यदि कोई Degree न हो तो यह सच्ची दृढ़ता/निश्चितता कहलाती है, निश्चितता तो Centre ही होता है, जबकि 'Degree' अर्थात् वर्तुल। निश्चितता तो स्वयं प्रकाशमय होती है और प्रकाश तो मूल शक्तिस्रोत रूप में महाशक्तिमान है।

७०

'शुद्धात्मा भगवान' के जाग्रत होने के बाद, भगवान की जाग्रत अवस्था के पश्चात्, बाकी रहने वाला व्यवहार 'भगवत व्यवहार' कहलाता है !

७१

'सत्' अर्थात हमारा, सहज, स्वाभाविक होने का भाव, जो कभी भी न होने

के भाव से हो ही नहीं सकता। 'स्थायी' होने का भाव किस स्वरूप में होता है ? स्वयं के अद्भुत दिव्य प्रकाश स्वरूप में, स्वयं की अनंत, असीम शक्तियों के साथ !

७२

जो स्वभावगत होती है, वहीं आदि शक्तियां होती हैं।

७३

शक्ति के बिना कोई भी क्रिया शक्य नहीं है। शक्ति बिना मन में विचार भी नहीं आते।

७४

'श्वास' बिना मूल्य चलती रहती है, इसलिये इसकी कीमत नहीं। ऑक्सीजन लगाने की जब ज़रूरत पड़ती है, तभी इसका सच्चा मोल पता चलता है।

७५

'Discharge' 'अहंकार' की स्थिति में जाग्रत रूप में हमें यह ध्यान रखना चाहिए कि हमारी जाग्रति समाप्त न हो जाए, अर्थात् 'Discharge' 'अहंकार' की स्थिति में किसी भी प्रकार की भावुकता आपको छोड़ेगी नहीं! लेकिन आप इसके प्रति आकर्षित नहीं होना, तटस्थ भाव से केवल 'देखते' रहना।

७६

'धर्मध्यान' - यह कृष्ण भगवान द्वारा कहे गए स्वधर्म रूप में वीतरागों का वास्तविक दर्शन धर्म स्वरूप है, अर्थात् अपने गुणों, 'देखना-जानना', स्वयं का स्वभाव, स्वधर्म-आत्मधर्म है, वह भी शरीर के साथ रहते हुए !

७७

'अक्रम विज्ञान' का मार्ग तो आत्मरंजन का मार्ग, हृदय का मार्ग है।

७८

'कल्पशक्ति' क्या है ? 'फल देने वाली शक्ति' है !

७९

'कल्पशक्ति' फलीभूत कब होती है ? जब 'मैं शुद्धात्मा हूँ' स्वरूप में, स्वयं का स्वभाव, 'ज्ञायकस्वभाव' उजागर होता है। कल्पशक्ति फलीभूत न हो, तब तक 'निर्विकल्प समाधि' नहीं हो सकती।

८०

आध्यात्म की शक्ति, कल्पशक्ति फलीभूत होने के बाद ही खिलती है।

८१

'भलमनसाहत' अर्थात् सम्पूर्ण जानकारी होते हुए भी धोखा खाना, और भोलापन अर्थात् नींद में रहते हुए धोखा खाना।

८२

'दादा भगवान' ने निरीक्षण में बताया कि जगत में हर मनुष्य का स्वभाव एक ही होता है। लोगों की संपत्ति एवं विपत्ति पर दृष्टि रखना।

८३

'Scientist' सच्चे योग अर्थ में योगी होना चाहिए। 'योगी अर्थात् सामने केवल लक्ष्य है, और कुछ नहीं और लक्ष्य की ओर वह बढ़ता ही जाता है। इस लक्ष्य की यात्रा में, लक्ष्य से हटाने वाली कई कसौटियां आती हैं, परंतु वह लक्ष्य से अपनी दृष्टि कभी नहीं हटाता।

८४

बोलती बंद हो जाना, यह सबसे आखिरी अनुभव है। इसके बिना अन्य कोई

उपाय है ही नहीं !

८५

अंतिम शब्द का शमन होते ही 'अव्याबाध-स्वरूप' प्रकट होता है।

८६

'आज्ञाधर्म' प्राप्त हुआ, अर्थात् हमें हल्का हो जाने की 'ज़िम्मेदारी' प्राप्त हो गई।

८७

जिस कठिन शब्द से संसार खड़ा हो जाता है, उसके विपरीत शब्द से संसार समाप्त हो जाता है।

८८

यदि हमें 'Freedom' चाहिए तो 'Freedom' शब्द का अर्थ अच्छी तरह समझना होगा। अर्थात् किसी भी परिस्थिति में यदि कोई नर्म, ककड़ी की तरह दीवार पर लकड़ी की तरह आघात करे, तो भी हमारे मन में एक भी अभिप्राय न पैदा हो। किसलिए ? क्योंकि हमें Freedom चाहिए। यह Freedom हमें किससे चाहिए ? जो चोट पहुंची है उससे। अर्थात् ? जंजाल, इस जंजाल से छूटेंगे नहीं, तब तक Freedom कैसे मिलेगी ? यह कब होगा ? जब जंजाल छूट जाएंगे, जाल टूट जाएंगे तब।

८९

लगाम जैसे-जैसे भीतर से छूटती जाती है, वैसे-वैसे प्रकृति की सत्ता आप में केन्द्रित होती जाती है। अर्थात् आपका काम चलता रहता है, फिर चाहे आप कुछ भी न करें, तब भी !

९०

'दशा' अर्थात् 'आत्मस्थिरता' दर्शाने और मापने वाला यंत्र !

९१

पांचों कर्मेन्द्रियों में एकाकार रूप में समा जाए, इसे ही 'इन्द्रिय सुख' कहते हैं। यह सांसारिक सुख है।

९२

बाह्य इन्द्रियों से अलग होकर, भीतर ही समा जाए। भीतरी इन्द्रियों में जाग्रत हो जाए, उसे 'निरिन्द्रिय सुख' कहते हैं। यह सुख त्यागियों का होता है। भीतरी इन्द्रियां अर्थात् ज्ञानेन्द्रियां।

९३

'अतीन्द्रिय सुख' अर्थात् सभी इन्द्रियों जैसे कर्मेन्द्रिय, ज्ञानेन्द्रिय एवं मन, इन सबसे परे, यानी इसमें शरीर, भीतर, बाहर का कुछ भी न हो। केवल अपने स्थायी 'स्वभाव' का सुख हो। कैसा स्वभाव ? अपना सहज, आत्मस्वभाव !

९४

'कृपा का अभिलाषी' अर्थात् जिसे कोई सांसारिक वस्तु की इच्छा न हो, मात्र जिसे 'आज़ादी की इच्छा' हो।

९५

कृपा क्या है ? कृपा आत्मा की अनंत शक्ति का ऐसा भंडार है, जहां द्वार हरदम खुला है, यह प्राप्त होने वाली शक्ति कृपा का ही परिणाम है !

९६

वास्तविक कृपा तो दृष्टि की कृपा होती है। दृष्टि अर्थात् आंखों की नहीं, शुद्धात्मा की दृष्टि। इसे 'तत्त्व दृष्टि' कहते हैं।

९७

माध्यम के द्वारा ही कृपा का 'Flow' होता है, इसलिए शरीर का माध्यम चाहिए ही चाहिए। ऐसा योग आगे अवश्य घटित होगा।

९८

'आलोचना' का अर्थ क्या है ? अनावरित हो जाना ! अर्थात् भीतर जो भी ढंका-छिपा है, हमें चुभता है वह निकाल देना। भीतर भय हो तो ओपन हो जाना। कहां ? जहां विश्वास हो वहां। वह जगह कहां है ? जहां 'एटमबॉम्ब' गिरने पर भी भय का एक अंश मात्र पैदा न हो। ऐसे ''ज्ञानी-पुरुष'' के पास।

९९

''ज्ञानी-पुरुष'' तथा गणधरों के समक्ष आलोचना की जा सकती है।

१००

सभी महात्मा 'दादा' के वश में होते हैं। इनकी समझ से नहीं, बल्कि शुद्ध प्रेम के वशीभूत होकर। कोई भी अपनी समझ से 'दादा' के प्रेमवश नहीं हो सका है!

१०१

अनुभव तो हर व्यक्ति का Right है, पर यह कहां से मिलता है ? यह तो भीतर के आज्ञा धर्म व्यवहार से मिलता है। जिससे हमारी स्वदेश-

स्थिति सशक्त होती जाती है। रिलेटिव व्यू पॉइंट जैसे-जैसे 'निश्चित लघु' होता जाएगा, अर्थात् स्वतंत्र होता जाएगा, वैसे-वैसे 'रिलेटिव व्यू पॉइंट' आता जाएगा। क्योंकि अभी भी 'रिलेटिव दृष्टि' का पक्कापन, गुरु भाव कच्चा नहीं पड़ा है। अर्थात् 'गुरुता' अभी भी 'लघुता' की ओर जा नहीं सकी है। यह Discharge है, फिर भी इसमें गुरुता है।

१०२

कैवल्य ज्ञान होने के लिए पुद्गल स्वभाव को ही पिघलाने की ज़रूरत है।

१०३

हमारी अपनी अंतर की स्वदेश-स्थिति हमें प्राप्त हो गई है, हमें जो शुद्ध प्रेम प्राप्त हुआ है, वह पूरा स्फूट (खील) हो रहा है; इसे संभाल रखें उसे ही 'दादा' को संभालकर रखा कहलाएगा।

१०४

आज्ञाधर्म से 'By relative viewpoint' से मन, वचन और शरीर का कोई भी प्रवर्त्तन निमित्त है और इससे होने वाली कोई भी क्रिया 'नैमित्तिक' कहलाती है।

१०५

जो 'कुदरत' के अधीन हो जाता है, उसे किसी भी चीज़ की ज़रूरत नहीं होती।

१०६

स्वभाव की परिणिति अर्थात् स्वभाव की क्रिया का सम्पूर्ण परिणमन। यह परिणित, स्वभाव स्वरूप में, परिणाम की प्राप्ति होती है; इसे स्थिर हुआ प्रमाण कहते हैं।

१०७

'स्वभाव' की तरलता अर्थात् स्वयं की 'जानने की क्रिया' तथा 'देखने की क्रिया'!

१०८

'विक्रमवाणी' उसे कहते हैं, जो चलती आ रही परंपराओं, रुढ़ियों के सभी क्रमों पर होने वाले विपरीत प्रभावों को उल्टा देती है।

१०९

अभिप्राय और वाणी से 'मन' का जन्म होता है।

११०

स्वप्न तो प्रत्येक व्यक्ति देखता है, क्योंकि अभिप्राय बिना कोई हो ही नहीं सकता।

१११

'अभिप्राय' यह भीतरी वाणी तथा बाह्य वाणी, दोनों का मेल है। अंतर वाणी के अभिप्राय का कर्म स्वप्न में होता है और जब-जब अंतर वाणी Express होती है, तब-तब सभी बाह्य क्रियाएं होती हैं।

११२

समझ व ज्ञान दोनों का संबंध बहुत ही प्रगाढ़ होता है, समझ ज्ञान के परिणाम को प्राप्त होती है।

११३

'कषाय' को ख़त्म करने के लिए तप होता है और यही भगवान की आज्ञा का मर्म है।

११४

'व्यवहार' का मोक्ष अवश्य होता है। व्यवहार को प्रतिपक्ष में जब तक नहीं किया जाता, तब तक व्यवहार का मोक्ष नहीं होता। प्रतिपक्ष करने का अर्थ है कि जो अच्छा लगता है, उसे जब तक अच्छा न लगने वाला न बना दें, तब तक इस व्यवहार का मोक्ष नहीं होता।

११५

स्वाधीन भाव बिना जब तक वाणी नहीं निकलती, इसमें अपनापन अवश्य होता है ! वाणी का यही सिद्धांत है।

११६

'समभाव से निपटारा' कब होता है ? जब हम अलग हो जाते हैं। जब अपने इस विलग होने के भाव में हमें अपनी ही भूल दिखाई देने लगे तो 'समभाव से निपटारा' होता है, अन्यथा नहीं।

११७

'मैं' हो जाना, यह सबसे बड़ी हिंसा है !

११८

स्वयं के भीतर शिष्यभाव से रहना, इसके लिए दृष्टि विकसित करनी पड़ती है, यह कैसे होता है ? सभी मेरे गुरु हैं ! भीतर खराब विचार आएं तो भी ये मेरे गुरु हैं, क्योंकि यह हमें छुड़ाने के लिए आ रहे हैं, इसलिए यह उपकारी तो अवश्य हुआ !

११९

लघुभाव युक्त व्यक्ति जगत में जीतते हैं, इन्हें कोई नहीं हरा सकता।

१२०

मन, वचन और शरीर-यह कुदरत के नियम भंग करने का इनाम हैं।

१२१

'निश्चय' - यह स्वयं के 'Self ' का 'Realise' होने के बाद का Vision है।

१२२

सम्पूर्ण मोक्षमार्ग, मुक्तिमार्ग तथा विदेही दशा, व्यवहार पर ही Based है। 'निश्चय' तो 'निश्चय' ही है।

१२३

आज्ञा का केन्द्र शुद्ध उपयोग है।

१२४

यदि दृष्टि मिली है तो इस दृष्टि से अपनी और सबकी प्रकृति को पढ़ो।

१२५

कैवल्यज्ञान मिले तभी भुगतान से छुटकारा मिलता है।

१२६

व्यवहार से अलग होकर, सबसे न्यारे हो गए और इस न्यारेपन से स्वयं के व्यवहार को परखेंगे तभी इस व्यवहार तथा इस व्यवहार के स्वरुप से सम्पूर्ण रूप में मुक्त हो सकते हैं। अर्थात् यही है व्यवहार से मुक्ति! इसी को सच्ची मुक्ति कहते हैं।

१२७

बिना 'वीतद्वेष' हुए 'वीतरागता' उजागर नहीं हो पाती, यह सिद्धांत है।

१२८

'व्यवहार' शब्द किस पर चरितार्थ होता है ? प्रतिष्ठित आत्मा पर !

१२९

'आज्ञा' भगवान को प्राप्त करने के प्रयत्नों का स्वरूप है। 'आज्ञा' - आराधना से ही कैवल्य ज्ञान प्राप्त होता है।

१३०

अपमान के संयोगों में भीतर ऐसा रहना चाहिए कि हमारे ही भीतर ऐसी कोई भूल है, जिसके कारण सामनेवाले व्यक्ति को हमारा अपमान करना पड़ा।

१३१

दूज से चौदस तक पहुंचा जा सकता है - केवल आज्ञाधर्म से।

१३२

गणपति अर्थात् लघुभाव का उत्तम निमित्त !

१३३

गुणों में, गुणों का, गुणभाव परिवर्तन होना, 'स्वभाव' में, इसे 'Function' कहते हैं।

१३४

उपयोग को 'Function' कहते हैं।

१३५

योग चेतन नहीं, परंतु योग अर्थात् चेतन से बिल्कुल अलग, भिन्न ऐसा मन, वाणी और कायारुपी शरीर इसे 'योग' कहा।

१३६

जब स्वयं, खुद अपने चेतन के होश में आ जाएं एवं अपने होशो-हवास सहित ध्यान बना रहे, तब सच्चा 'धर्म-ध्यान' रहा समझा जाता है।

१३७

सच्चा धर्मध्यान एवं शुक्लध्यान द्वैताद्वैत भाव से ही होता है।

१३८

''ज्ञानी पुरुष का व्यवहार'' शिवजी का व्यवहार है और प्रत्यक्षता में, खुले स्वरुप में परमार्थ हमारे समक्ष उपस्थित हो जाए तो यह सबसे उच्च 'परमार्थ-व्यवहार' कहलाता है।

१३९

'चरणारविंद' अर्थात् ''ज्ञानी-पुरुष'' की चर्या !

१४०

क्षायक दृष्टि के दर्शन से हमारा ज्ञान-स्वभाव यदि क्षायकस्वरुप में Stable होता जाए तो इसे 'क्षायक स्वभाव' कहते हैं।

१४१

दिव्य प्रकृति अर्थात् Normal, कुदरती सहज स्वभाव वाली प्रकृति !

१४२

बाहर से आने वाला उपसर्ग, मन के 'लेवल' (Level) पर हुई पिछली गलती के कारण ही आता है।

१४३

मनुष्य व वृक्ष में फ़र्क क्या है ? यह भी कर्म के वश में है, और वह भी। परंतु मनुष्य में एक सत्ता ऐसी है कि वह विचार कर सकता है। बुद्धि का उपयोग कर सकता है ! और सबसे बड़ी सत्ता यह है कि सुख व दुःख का यह सम 'मिक्सचर' है। यह सबसे बड़ी सत्ता है और उसे इसका भरपूर बेस्वाद आता रहता है। सुख खोज रहा है। इसलिए उसे लगता है कि किस तरह इस आने वाले दुःख से छुटकारा पाए, सुख के लिए।

१४४

'व्यवहार' की जगह 'व्यवहार', इस दखल बिना व्यवहारस्वरुप हो जाना, अर्थात् यह व्यवहार अपने आप ही पहचाना जाने लगता है। उसका स्वभाव ही है पहचाना जाने का।

१४५

पर-रुचि कम हो जाने में अपना स्वयं का स्वभाव प्रकट होता है और वहीं स्वभाव रुचि पैदा हो जाती है, तो भी इस उत्पन्न हुई स्वभाव रुचि को इतना पोषण नहीं मिलता, जिससे एक Healthy growth होकर, यह विकसित होती रहे, क्योंकि पररुचि से छूट तो अवश्य गए, परंतु इसकी स्निग्धता के विषय में अब हम जिस आज्ञाधर्म से ऐसा घटित होता है, उसमें इस आज्ञाधर्म के होने का भाव निश्चय के संबंध में कमज़ोर हो जाते है, इसलिए इसे मज़बूत बनना आवश्यक है।

१४६

साधु का पेट किसके लिए होता है ? लोगों के लिए ? लोग अर्थात् कौन? जब तक लोकस्वरुप को नहीं समझा और इसे समझने के लिए लोगों से सीखा नहीं, तब तक लोक क्या और लोक स्वरुप क्या, इसकी समझ कैसे

आएगी ? और लोगों के लिए केवल 'कल्याण, कल्याण' कहते रहने से कुछ नहीं होगा !

१४७

स्वयं का 'स्वभाव' प्रकट हो गया। तो स्वभाव क्या है ? 'उपयोगमय प्रकाश' !

१४८

सबसे बड़ा सांसारिक रोग है स्वच्छंद, निजछंद !

१४९

सभी महात्मा जानते हैं कि सीधे तो हो गए हैं, लेकिन सीधा रहने के लिए भीतर बहुत हलचल मची है। और इसके समाधान के लिए ही 'ज्ञानियों' ने 'आज्ञाधर्म' दिया है।

१५०

'रिलेटिव व्यूपॉइंट' की आज्ञा की अपूर्णता से ही सम्पूर्ण कैवल्य ज्ञान रुका हुआ है। 'रियल व्यूपॉइंट' के खुले बिना कुछ भी नहीं होता। और यह खुला ज़रुर है, तो फिर क्या बाकी रहा ? जिस कारण से 'रियल व्यूपॉइंट' नहीं खुल रहा था, वो हो गया ! अब खुला हुआ इसका स्वभाव, जो असली मूल है, और वह 'रिलेटिव' भाव, जो अंतर में छिपा था, जिसे न जानने के कारण, यह 'रिलेटिव' भाव मुक्त होकर छूट जाता है और यह 'रियल', स्वयं अपनी तरह से 'स्वभाव' बन जाता है। 'रिलेटिव' किस तरह छूटता है ? 'रियल' तो प्राप्त हो गया, 'रियल व्यूपॉइंट' से ! और तभी इस छूटने के लिए पहली आज्ञा की बहुत कीमत होती है।

१५१

जीवन-मरण के चक्र में जो Crux होता है, माला के मोती की तरह होता

है, यह आशय है और इस आशय के अनुरूप ही रुचि होती है, जो जीवन-मरण के चक्र में 'वर्ल्ड-रेग्युलेटर' के रुप में होता है।

१५२

'दादा भगवान' ने महात्माओं को 'मैं' और 'मेरा' से छुटकारा दिलाकर, 'हमारा' शब्द दिया ! यह कोई सीधा-सादा शब्द नहीं, यह तो पूरी तरह एक अभेदता का प्रयोग है।

१५३

'आज्ञा का निश्चय', मेरु की तरह अडिग रहे, यही शक्ति मांगने जैसी है।

१५४

वीतराग भगवंतो की वीतरागमुद्रा तो, ''ज्ञानी पुरुष'' की वीतरागदशा - ही है शिवस्वरूप, कल्याणस्वरूप।

१५५

अगर भावना प्रार्थना के साथ रही तो ही वो सही भाव है, नहीं तो नहीं। कौन सी प्रार्थना ? तो जो भावनास्वरुप रहने के लिए शक्ति प्राप्त हो, जिससे हमें परिणामस्वरूप से हमारे 'मन-वचन-काया' का साधन इस ढंग से प्राप्त हो। बिना सही साधन कुछ नहीं हो पाता।

१५६

दर्शन को 'State of being' कहते हैं ! अर्थात् 'State of being' का दर्शन करना है, और दर्शन करता भी है, लेकिन State of being है एवं जिसके दर्शन करते हैं वह भी State of being है !! अर्थात् State of being से State of being के दर्शन करने हैं, यानी State of being जितना कमज़ोर होगा, यह State of being के दर्शन से पक्का या Stabilize हो जाएगा।

१५७

'क्रममार्ग' यह परिणाम लक्षी होता है, जबकि 'अक्रममार्ग' परिणामी होता है।

१५८

स्वयं के हित का लक्ष्य रखकर, हमेशा दूसरों के हित का ख्याल रखें, यही मूल सिद्धांत है।

१५९

'अनुभव' - यह लेने-देने की बात है ही नहीं !

१६०

कोई भी परिणामस्वरुप होने के लिए, इसके Cause का सेवन न हो, तब तक वह परिणाम आता ही नहीं, परिणाम Effect है।

१६१

'मैं' का भाव होना Physical body का स्वभाव नहीं।

१६२

अनुभव, तभी अनुभवी कहलाता है, जब यह ठहरे हुए सिद्धांत के रुप में होता है।

१६३

जो देता है, कुछ लेता नहीं, उसे 'ज्ञान' अपने-आप मिल जाता है।

१६४

जब शिष्यवृत्ति से सब जगह रहते हैं तो 'ज्ञान' अपने-आप आपके पास आ जाता है।

१६५

वही गुरु श्रेष्ठ है, जो लघु है।

१६६

शुद्धात्मादृष्टि से जो पढ़ाई हो रही है वो तो अलौकिक पढ़ाई है।

१६७

जो 'Naturality' हो, वही संपूर्ण मुक्ति है, उसी को ही मोक्ष कहते हैं।

१६८

वर्तमानता ही जीवनमुक्तदशा है।

१६९

'श्रद्धा' अपना 'शुद्धात्मा' का 'दर्शन गुण' है।

१७०

उपयोग शुद्धात्मा की लाक्षणिकता है, शरीर की नहीं।

१७१

जीवभाव से मुक्त होकर, छुटकारा पाकर, हम 'स्वभाव' में 'फ़िट' हो गए और शिवभाव प्राप्त किया तब शिवभाव से हमारे शरीर के साथ जो संबंध है, वह 'पड़ौसी संबंध' कहलाता है।

१७२

'फाइल नंबर एक' के साथ विनय से रहना है। विनय का मतलब उसके साथ झगड़ना नहीं है, लेकिन जो है, जैसा है वैसे ही स्वीकार करके, उसके साथ व्यवहार करना है।

१७३

'विनय' अर्थात् आर्य संस्कार युक्त जीवन !

१७४

आर्य संस्कार युक्त जीवन सम्पूर्ण रूप से ऐसा अर्पणता वाला जीवन होता है, जिसमें परमात्म बुद्धि स्वीकार कर ली गई हो, और पूरी तरह समर्पित होकर, इसी तरह जीवन जीना हो !

१७५

'ज्ञानी पुरुष' में परमात्म बुद्धि एक पल के लिए भी आगे-पीछे नहीं होती, यही परम विनय है !

१७६

'साक्षी भाव' - अर्थात् इसका उदय कर्म से हुआ है, इसी प्रमाण से जीवन जीना अर्थात् प्रकृति के पक्ष में रहना !

१७७

परिणाम क्या है ? गुण का परिवर्तन है। गुण को गुणस्वरूप में तब देखा जाता है, जब यह परिवर्तन स्वभाव से आए, अन्यथा नहीं। परिवर्तन न हो तो इसे गुण किस तरह कहा जा सकता है ?!

१७८

गुण परिवर्तन पाने की प्रक्रिया यह परिणमन तथा परिणित का Continuation है। परिणित का परिणमन होता जाए तो इसे 'परिणमन' कहते हैं और परिणमन हो जाए तो इसे 'परिणाम' कहते हैं।

१७९

'धर्म' दरअसल घर (शरीर) में ही रहता है।

१८०

जो भी परिस्थिति आती है वो ऐसे ही नहीं आती, लेकिन उसका हिसाब लेकर ही आती है और महात्माओं को जो आनंद अंदर से मिला है उसे पक्का करती जाती है।

१८१

भगवान की वाणी वो 'रेकॉर्ड' वाणी ही है, वो 'ज्ञान' नहीं है, कभी भी नहीं बनी और आज भी वैसे नहीं, लेकिन वो 'ज्ञान' के लिए साधन-स्वरूप ज़रुर है।

१८२

हम स्वयं अपने आपको संभालें, यही काफी है, क्योंकि फिर दुनिया में हमें कोई भी मूर्ख नहीं बना सकता।

१८३

'सत्संग' अर्थात् हमें अपने हित की बात पकड़ में आ जाए कि मेरा हित किसमें है ? और हित किसमें है अगर यह बात पकड़ में आ जाए तो इसे किस तरह संभाले रखना है। इसका मुझे कितना लाभ हुआ, यह 'धर्मसभा' है।

१८४

'शुक्लध्यान' की प्राप्ति हुए बिना, किसी भी दिन 'धर्मध्यान' इसके वास्तविक स्वरूप में नहीं हो सकता।

१८५

किसी भी प्रकार के 'रस' में आनंद नहीं। किसी भी तरह का रस लेने जैसा नहीं है और हमसे कोई भी व्यक्ति गलत रस न प्राप्त करे, इसका ख़ास ध्यान रखें। घर में विशेष रूप से यह ख्याल रखें।

१८६

'निमित्त' किस तरह काम करता है ? नैमित्तिक कर्त्ता के रूप में !

१८७

'जगत' की 'रचना' कुदरती रूप में केवल निमित्त-नैमित्तिक स्वरुप में ही है, कुछ और नहीं। परंतु यह बात कोई नहीं जानता, फिर भी इसका रहस्य जानने के चक्कर में हर कोई पड़ा रहता है।

१८८

'रिलेटिव' भाषा के शमन के लिए, 'रियल भाषा' से इसके साथ व्यवहार करना, यही 'दिव्य व्यवहार' है।

१८९

'वाणी' निमित्त के अधीन होकर ही निकलती है, यह निकालने से नहीं निकलती, एक भी अक्षर कोई बोलनेवाला बोल नहीं सकता, यही सिद्धांत है। जो यह समझ लेगा, उसका कल्याण हो जाएगा।

१९०

स्वयं निमित्तस्वरूप रहना, यह पुरुषार्थ का परिणाम है।

१९१

प्रगति के लिए 'जागृति' चाहिए।

१९२

सच्ची भक्ति वही है, जो जागृति के साथ हो।

१९३

सभी प्रकार के व्यवहार में एक नंबर की फ़ाइल के प्रति Sincerity हो जाए, यह Sincerity, basic आवश्यकता है। यह Sincerity होगी तो इस Sincerity को Concern पूर्वक, इसके संबंधित व्यवहारों में Sincere भी हो सकते हैं। नहीं तो कभी कोई नहीं हो सकता।

१९४

'जागृति' का अर्थ क्या है ? जीवन के हर प्रसंग में Real Viewpoint होने का भाव, यही स्वाद बनाए रखना; इसी में जागृति है।

१९५

'भूल' बाहर (अपने मन, वचन, शरीर के बाहर) कहीं नहीं है। यह हमारे भीतर ही है, यह जान लेना बहुत ही लाभदायक होता है।

१९६

प्रगति एवं जागृति के लिए प्रतिकूल संयोग ही लाभदायक हैं।

१९७

जीवन किस तरह जिएं ? चाहे जो भी परिस्थिति हो हम हमेशा इसके स्वागत के लिए तैयार रहें। और अगर परिस्थिति प्रतिकूल हो तो इसका स्वागत पहले करें। अनुकूल संयोग में बहुत ज़्यादा प्रसन्न न हों। Normal रहें। Basically प्रतिकूल परिस्थिति का प्रसन्नता के साथ स्वागत करें।

१९८

बाहर के व्यवहार में रहो ! लेकिन कैसे ? दो दृष्टि से : 'व्यवहार दृष्टि' तथा निश्चय दृष्टि के साथ। 'निश्चय दृष्टि' कमज़ोर न पड़ जाए, इसका ख़ास ध्यान रखना।

१९९

बहते जाओ। बहते रहना ही अनुभव है। अनुभव कल्पना नहीं है।

२००

शक्ति की प्रार्थना पर जो ध्यान देता है उसकी प्रगति तेज़ी से होती है।

२०१

केवल 'प्रार्थना' से काम नहीं चलेगा, निश्चय होना चाहिए ! इसलिए निश्चय के साथ प्रार्थना करना है। और प्रार्थना बिना निश्चय, यह तो लूला-लंगड़ा निश्चय कहलाता है।

२०२

जगत जिसे 'ठोस' कहते हैं, ''ज्ञानी'' इसकी पोल जानते हैं और ''ज्ञानी'' जिसे 'ठोस' कहते हैं, वह यह जगत जानता ही नहीं ! इसलिए इसमें ठोसता ढूंढ़ने के लिए ये 'पोल' स्वरूप में ठोसता की खोज करते हैं। खोजते हैं ठोसता, लेकिन वहां पोल या 'खोखलापन' ही मिलता है। इस तरह दो तरफा मार खाते हैं।

२०३

'ठोसता' अर्थात् स्वभाव की ठोसता और 'खोखलापन' अर्थात् परभाव का खोखलापन ! परभाव का खोखलापन सम्पूर्ण अवस्थाओं का लहर स्वरूप है।

२०४

जो स्वयं का आदर करना जानता है, वह सबका आदर करता है। उसे देने नहीं जाना पड़ेगा। स्वयं का सम्मान क्या है ? स्वयं जानबूझकर, खुद को दुःख न पहुंचाना। फिर वह किसी को भी दुःख नहीं पहुंचाएगा। अर्थात् जो स्वयं भीतर सुखी है, वह बाहर भी हर एक को सुख ही बांटेगा।

२०५

जिस सीमा तक कोई स्वयं के प्रति ईमानदार है, उस सीमा तक कोई भी व्यक्ति समाज के प्रति स्वतंत्र है।

२०६

'दादा भगवान' का एक ही सिद्धांत है कि लोगों में अनादिकाल से जो 'होने' की आदत है, उसे छुड़ाया जाना चाहिए। 'दादा' ऐसा होना है, 'दादा' वैसा होना है ! दादा ने इन्हें 'होने' के भाव से छुड़ाया। Direct नहीं छुड़ाते, परंतु अपनी बात इस तरह रखते हैं कि समझ में और पकड़ में आ जाए तो काम हो जाए। 'होने' के भाव से हमेशा के लिए छूट जाए!

२०७

'परिणमिक' सत्ता अर्थात् क्या ? स्वयं की आत्मा की अनंत शक्तियों को 'देखना-जानना'। यही देखने-जानने की क्रिया 'परिणामिक' कहलाती है। यही है परिणामिक सत्ता !

२०८

महात्माओं के लिए यदि हम वर्तमान में हैं, उदय के प्रमाण से हैं तो इसी उदय प्रमाण से होने के भाव में, वर्तमानता में हमारे उपयोग से कहीं भी कोई क्षति पहुंचती हो, रुकावट आती हो, तो इसके कारण उपयोग चुकाने वाली

सभी वस्तुएं, इनका चाहे जितना भी हिसाब रखा जाए, यह अच्छा है और इन सभी के लिए इसका प्रतिक्रमण हो, तो यह उत्तम है !

२०९

'प्रतिक्रमण' का अर्थ क्या है ? हमें जो वर्तमानता प्राप्त हुई है, यह वर्तमानता सम्पूर्ण रूप से संभाल कर रखी जा सके, इसके लिए किया जाने वाला पुरुषार्थ !

२१०

'साधकता' यह वर्तमान की सतत बहती गति है ! (continuous process of) इसमें किसी भी तरह का बाधा (Interruption) न हो, वह जाग्रति है !!

२११

'दादा भगवान' ने कहा है कि उपदेश देना हो तो, उपदेश सुनने की पहले क्षमता पैदा करनी होगी। यथार्थ सुनने के भाव से, हमारे भीतर श्राव्य जाग्रत हुआ हो और 'श्राव्य' होकर, भीतर 'बोधस्वरुप' पैदा हुआ हो और जितना भी थोड़ा बहुत ग्रहण किया हो, तत्पश्चात आप इसके योग्य बनें।

२१२

प्रत्यक्षता का कोई विकल्प (Substitute) नहीं है।

२१३

हमने आगे किसी को Lend किया, अर्थात् Borrow करने की बारी आई समझो। अब तो Borrow करना बंद हो गया है इसलिए आगे Borrow किया हुआ Lend होता रहता है। 'समभाव से निपटारा' यही है, इसे 'Lend' नहीं कहते, इसे 'Payment' कहते हैं।

२१४

हम याद आते रहते हैं न ! आपके चित्त में हम रहते रहें, इसे ही 'निदिध्यासन' कहते हैं !

२१५

शरीर - यह जगत है। वह समझ में ही नहीं आता। शरीर के साथ किया गया व्यवहार, जगत के साथ किए गए व्यवहार के समान है। हमें इस तरह रहना है।

२१६

प्रत्यक्षता में 'विज्ञान' को समझना, इसे ही 'सत्संग का महात्म्य' कहते हैं।

२१७

'Free' वाणी अर्थात् क्या है ? अर्थात् किसी भी जगह 'स्वामित्व' भाव का ग्रहण लगे बिना की वाणी। यह वाणी जो निकलती है, यह out of nothing से नहीं निकलती, आगे जो Record हुआ है, उसी भाव संज्ञा से यह वाणी निकलती है, और कुछ नहीं। किसी भी तरीके से भाव संज्ञा के रुप में होना उचित है। 'वाणी' तभी निकलती है।

२१८

जिसे अनुभव होता है, उसे बोलना न आए, यह हमें देखना नहीं है, परंतु जो वाणी अनुभव प्रमाण से निकलती है, फिर चाहे जो भी शब्द निकलें, फिर चाहे वह गांव का हो या आदिवासी, यही ज्ञानवाणी है।

२१९

एक समय के लिये भ्रांतपूर्ण मान्यता से मुक्त होना कठिन है।

२२०

Selfrealization साध्य है, यही ध्येय है।

२२१

विज्ञान स्वरूप अर्थात् क्या ? यह 'रिलेटिव' को 'रिलेटिव' भाव से, 'रिलेटिव' स्वभाव से अलग करने का प्रयोग है।

२२२

हमें 'चित्तशुद्धि' करने की ज़रुरत ही नहीं। हमारी चित्तशुद्धि तो हो गई है। हमें अब केवल 'उपयोग शुद्धि' करना है। अर्थात् 'व्यवहार शुद्धि' करना है। यह केवल 'शुद्ध उपयोग' से ही हो सकती है। जाग्रति आ जाए और जाग्रति में जितना व्यवहार हो, वही शुद्ध व्यवहार है।

२२३

'दादा भगवान की असीम जय-जयकार हो', पच्चीस 'मिनट' तक यदि एकचित्त रहा तो सौ अवतारों की यात्रा का फल प्राप्त होता है।

२२४

संसार तो 'अपने पन' के स्वभाव का होता है। अर्थात् एक-दूसरे से 'अपेक्षा' रखने वाला स्वभाव, संसार का स्वरूप ही ऐसा है। लेकिन जो संसार से विरकत हो गया, वह संसार में रहकर भी इससे अनासक्त हो गया।

२२५

किसी की भी प्रतीक्षा करना, यह एक घोर अपराध है। यह संसार में भटकन पैदा करता है। जिस व्यक्ति को किसी की प्रतीक्षा है, वह खोया हुआ ही रहता है, अर्थात् उसका वर्तमान तो होता नहीं। और जिसका वर्तमान ही न हो, वह व्यक्ति कैसा होगा ?!

२२६

बहते पानी की तरह Flow में रहना। बाहर परिस्थिति चाहे जैसी भी हो, परंतु ऐसे वातावरण में भी, भीतर से वर्तमान की परिस्थिति बनी रह सकती है।

२२७

हमें देह की परिणिति नहीं होती, हमें तो स्वभाव की परिणिति होती है।

२२८

विद्या, कब विद्या कहलाती है ? यह 'सहज रूप' में रहे तभी। बाकी तो विद्या नहीं कहलाती। विद्या ही नहीं रहती। यह रिद्धि में चली जाती है।

२२९

स्वतंत्रता का अर्थ स्वच्छंदता या स्वेच्छा नहीं। आज़ादी का अर्थ तो दूसरों के सोचे अनुसार रहना है। हमें कठपुतली की तरह नचाए, तभी हम स्वतंत्र हैं, यह समझ लेना।

२३०

कोई भी व्यक्ति, कभी भी कमज़ोर पड़े तो उसे Support करना चाहिए। परंतु उसे पता न चले इस तरह। तभी उसे इस कमज़ोरी से निकलने का Scope मिलता है।

२३१

सुनने योग्य वचन हों और इसे सुना जाए तो ये वचन 'श्रुत' कहलाते हैं तथा अगले ने इसे 'सुना' कहलाता है।

२३२

'अभ्यास' का अर्थ है कभी भी, कहीं भी रुकना नहीं ! वर्तमानता के साथ Flow में रहना।

२३३

कल्याण तो भावना की बात है, करने की नहीं।

२३४

हर परिस्थिति का समाधान होता रहता है। लेकिन इसे समाधान कब कहते हैं, जब यह जाग्रत रूप में, होशो हवास में हो तभी। यह Negative हो और गलती के साथ हो, तो इसकी भूल दिखाई देनी चाहिए। तभी इसका समाधान हुआ कहलाता है।

२३५

सम्पूर्ण जीवन का सार है Positive दृष्टि !

२३६

जिसे स्वयं अपना सोचा हुआ, न तो करना है, न करवाना है, न ही कर्ता के प्रति कोई अनुमोदन है, उसे 'वचनसिद्धि' प्राप्त होती है।

२३७

'व्यवहार नमस्कार' यही सद्विवेक का धर्म है। 'निश्चय-नमस्कार' यह परम विनय का धर्म है।

२३८

यदि व्यवहार से यह 'विज्ञान' पकड़ में आ जाए, तो पूरा व्यवहारिक

जीवन ही सुखी हो जाए। दूसरे के साथ धोखा ही मिट जाए। क्योंकि उसे पूरी व्यवहारिक भाषा ही समझ में आ जाए कि यह धोखा देना ही धोखा खाना है।

२३९

जगत का स्वभाव क्या है ? अर्थात् सम्मान, इज़्ज़त स्वरुप में, सम्मान के व्यापार (Business) में, सम्मान के व्यापार (Business) वाले स्वरूप में रहना, यही उसका धंधा है।

२४०

'वीतराग' स्थिति अर्थात् शरीर से अलग, अनोखी शुद्धात्मा की परमात्मदशा।

२४१

'व्यवहार' तो उसे कहते हैं, जिसे आप अंदर कौन से ध्यान में रहकर करते हैं!

२४२

'आज्ञाधर्म' तो तलवार की धार के समान है। अर्थात् इस तरह 'रियल व्यूपॉइंट' से चलें कि 'रिलेटिव' का, हमारे ऊपर कोई प्रभाव न हो।

२४३

ससुर शैब में रहे, तो बहु मर्यादा में रहे। यहां बहु अर्थात् प्रकृति तथा ससुर अर्थात् गणपति, गणपति तो सदैव शिवजी की आज्ञा भार में ही होते हैं। भार अर्थात् आज्ञा। यानी आज्ञा के भार अर्थात् मर्यादा में रहें तो प्रकृति मर्यादा में रहेगी। अर्थात् सही ज़रुरत के समय रुकावट नहीं बनेगी।

२४४

अपना काम दूसरे से करवा लेना इसे ही 'हवाला' कहते हैं।

२४५

जब तक शरीर है और शरीर के साथ 'रियल व्यूपॉइंट' से हर व्यवहार होता है, यह 'रिलेटिव व्यवहार', जब तक निपटता नहीं, अर्थात् जब तक इसका 'समभाव से निपटारा' नहीं होता, अर्थात् जब तक 'समभाव से निपटारा' बाकी हो, तब तक 'सम्यक' भाव बना रहता है। 'समभाव से निपटारा' जितना हो गया, उतना 'कैवल्य' भाव हो गया।

२४६

'श्रद्धा' एक ज्ञान गुण की अवस्था है। यह ज्ञानगुण का पर्याय है, यह ज्ञानगुण के प्रकट होने का भाव है।

२४७

'सम्यक्' चरित्र जैसे-जैसे प्रकट होता जाता है, वैसे-वैसे कैवल्य ज्ञान के श्रद्धा एवं मान्यता के अंश ज्ञान स्वरुप होते जाते हैं अर्थात् 'अनुभव स्वरुप' होते जाते हैं। अर्थात् पक्का 'स्वाद' आता जाता है।

२४८

'विज्ञान' अर्थात् 'समझ' का विषय। सच्ची पढ़ाई यही कहलाती है। यह पढ़ाई अनुभव सिद्ध हो अर्थात् जितना अध्ययन किया हो, वह अनुभव से सिद्ध होता जाए, पक्का होता जाए। अनुभव से जो सिद्ध हो जाए, वही सच्ची 'पढ़ाई' है।

२४९

'ज्ञान' की कीमत कब होती है ? जब ज्ञान अपने जीवन में उतारा जाए। जब अनुभव सिद्ध हो जाए।

२५०

'अच्युत' अर्थात् स्वयं का स्थान 'स्थायी' है, अविनाशी है, Perpetual है, इसमें निरंतरता बनी रहना।

२५१

जो स्वयं के प्रति वफ़ादार हो, स्वयं के प्रति वफ़ादारी कभी न छोड़े, उसे 'Sincere' कहते हैं।

२५२

नियम व भगवान दोनों ही विरोधाभासी हैं। जहां भगवान हैं, वहां नियम नहीं होते। और जहां नियम हों, वहां भगवान नहीं होते।

२५३

'अंतरवाणी' जो सुनाई दे; और जो वाणी 'सुन ली जाए' तो आप सचमुच स्वयं का कहा, सुना सुनने वाले कहलाएंगे।

२५४

सच्चा 'श्रोता' वही है, जो स्वयं का कहा, स्वयं अच्छी तरह सुन सके।

२५५

मन के विचार भोग्य हैं, भीतर चलने वाली वाणी भी भोग्य है और पचेंन्द्रियों से बाहर जो व्यवहार होता है, वह भी भोग्य है।

२५६

'कर्त्तापद' तथा 'भोक्तापद' दोनों ही भोग्य हैं। 'कर्त्तापद' तथा 'कर्त्तापन' का भाव भी भोग्य है। यह 'Charge' में जाता है तथा 'भोक्तापद' यह 'भोक्ता' भाव का भोग्य है, यह 'Discharge' में जाता है।

२५७

'प्रेरणा' करने वाला गुनहगार है। क्रिया करने वाला Secondary गुनहगार है। यही सिद्धांत है।

२५८

'भोग्य' को देखोगे तो 'शुद्धात्मा' स्वयं दिखाई देगी।

२५९

धर्म उसे कहते हैं जो किसी भी परिस्थिति में आपको स्थिर रखे।

२६०

Opinion अपनेपन का भाव है।

२६१

''ज्ञानी पुरुष'' का पिछला Opinion भाव Possession बिना होता है।

२६२

निमित्त और नैमित्तिक का भाव भीतर ही मौजूद है। अंतरवाचा निमित्त है और बाह्यवाचा यह रिकॉर्ड है, नैमित्तिक है।

२६३

जो गुण स्वभाव से परिणमित होता रहता है, वो 'द्रव्य' कहलाता है।

२६४

संचलन और संचयन दो अलग-अलग वस्तुएं हैं। संचयन (Change) हो तो इसका संचलन (Discharge) अवश्य होगा। यह संचलन फिर प्रकृति में जाएगा और प्रकृति इसका संचलन करेगी।

२६५

पुद्गल के घर्षण से पैदा होने वाली अवस्था शब्द स्वरूप है।

२६६

'स्वभाव' का अर्थ है गुणों के गुणस्वरूप होने का भाव !

२६७

स्वयं की 'स्वगुणमय' स्थिति 'प्राण' कहलाती है।

२६८

मन, वचन और काया क्या है ? कल्पशक्ति की उपस्थिति में, स्वयं का 'मैं' भाव, जहां भी 'मैं' न हो, यह मानना, इस तरह का भाव कल्पशक्ति की उपस्थिति में इसके होने का भाव, तो इस उपस्थिति में कल्पशक्ति कैसे फलेगी ? इसमें होने का भाव। कैसे होगा ? विकल्प स्वरूप में। अर्थात् क्या ? तो कहते हैं जगत स्वरूप !

२६९

मन, वचन और काया में कल्पशक्ति फलीभूत हुई अर्थात् 'मैं शुद्धात्मा हूँ' स्वरूप में स्वयं का स्वभाव, ज्ञायक स्वभाव प्रकट हो, तो यह प्रज्ञाशक्ति है ! यह किस तरह काम करती है ? स्वयं का स्वभाव प्रकट हो गया, यह स्वभाव की स्वाभाविक शक्ति से, संयम के साथ स्वभाव में परिणित हो जाए। जैसे कल्पवृक्ष इच्छा करें और फल देता है, उसी तरह 'मैं अनंत ज्ञान वाला हूँ', ऐसा कहते ही स्वभाव में परिणित हो जाए।

२७०

आध्यात्म की शक्ति, कल्पशक्ति फलीभूत होने के बाद ही खिलती है। यही सिद्धांत है।

२७१

प्रकृति क्या है ? प्रकृति कुदरत है। कुदरत क्या है ? यह व्यवहार का पूरा भाग है। यह कुदरत है। अब व्यवहार का भाग क्या है ? यह जो सबकुछ हो रहा है, बन रहा है, यह सबकुछ कुदरत है !

२७२

जैसी मान्यता, वैसा व्यवहार !

२७३

एक 'Wrong belief' पर ही सम्पूर्ण जगत संचालित हो रहा है ! इस 'Wrong belief' के परिणमन का भाग संचालित हो रहा है। परिणमन का भाग संचालित हो जाना चाहिए, क्योंकि Wrong belief में संचालन नहीं होता, लेकिन 'संचयन' होता है।

२७४

विभाविक हुआ शुद्ध पुद्गल ही मिश्र पुद्गल है !

२७५

'मैं कौन हूँ', यह जानना ही सच्ची पढ़ाई है !

२७६

शुद्ध पुद्गल जब तक नहीं होगा, तब तक शरीर जन्म नहीं ले सकता। और यदि यह अकेला हो तो भी शरीर जन्म नहीं ले सकता। इसलिए चेतन की उपस्थिति में, चेतन की कल्पशक्ति के कारण विभाविक हो गया शुद्ध पुद्गल, यह मिश्र पुद्गल में जो मिश्रण का भाग है, वह चेतन की उपस्थिति के कारण है। यह मिश्रित रूप किससे है? केवल 'मान्यता' से! अर्थात् चेतन की उपस्थिति में मस्ती में मदांध ब्रह्म !!

२७७

अपने स्वभाव का दर्शन, शुद्धात्मा स्वभाव का दर्शन जो उजागर हो गया, उसे सुदर्शन कहते हैं।

२७८

मन-वचन-काया पतंग है और 'शुद्धात्मा दृष्टि' पतंग की डोर है (Relative = पतंग और Real = पतंग की डोर का उपयोग)।

२७९

जीवन जो कर्त्तव्य का ऋण है और वो हमने अपनी इच्छा से मांगा है। इसलिए हमें कर्त्तव्य निभाना पड़ेगा। यही जीवन है।

२८०

जीवन क्या है ? केवल ऋण है। क्योंकि मांगा हुआ है न ?!

२८१

हमारी दृष्टि में 'मैं' करने वाला 'रिलेटिव' भाव 'मैं' के साथ ऐसा नहीं होना चाहिए। यह बन सकता है, इसलिए सावधान रहें !

२८२

'कुदरत' अपनी सम्पूर्ण सत्ता उसे ही सौंपते हैं, जिसका 'स्वामित्व' का भाव, 'मैं' का भाव खत्म हो जाता है, और जो भगवान के रूप में दिव्य व्यवहार करता है; इसलिए ''ज्ञानी'' जो चाहे कर सकते है।

२८३

'दादा भगवान' ने कहा है कि 'स्पर्धा', आंतरिक में, आज्ञाधर्म में, अपना स्वदेश संभालकर जानकारी में होना उचित है, अन्य किसी प्रकार से नहीं।

२८४

परिस्थिति में 'Positive' भाव का लाभ उठाते रहना ही जीवन है। और जीवन का अर्थ भी यही है, जीवन का उद्देश्य भी यही है !

२८५

सुख का मार्ग 'समझ' का मार्ग है। सुख अर्थात् क्या ? दुःख की स्थिति में भी जो दुःख, सुखरूप लगे, उसे सुख कहते हैं। सच्चा सुख यही है। क्योंकि यदि दुःख की स्थिति भी सुखरूप लगे, तो आने वाली सुख की स्थिति में तो आनंद की सीमा ही न रहे !

२८६

'भाव' शब्द सबसे महत्त्वपूर्ण है। सांसारिक भाषा में 'भाव' यह आपका माना हुआ धर्म तथा धर्म की मान्यता में आपका अपनेपन का भाव है। जब आप हैं, तो आपकी धर्म की मान्यता तथा आपके माने हुए धर्म में भी आप हो सकते हैं, नहीं तो कैसे हो सकेंगे ?!

२८७

'आत्मा' स्वभाव से ही सहज होती है, इसलिए इसे किसी भी प्रयत्न की ज़रूरत नहीं पड़ती। इसके 'होने' का भाव, 'अस्तित्व' का भाव, किसी भी आधार के बिना, किसी भी कष्ट बिना अपने स्वभाव से ही है।

२८८

हम आनंद के अतिरेक में आकर, निश्चयपूर्वक व्यवहार में रहें, यह अत्यधिक जोखिमकारक है।

२८९

भाव दया का अर्थ किसी की जान बचाना नहीं, लेकिन हम जब किसी के

प्रति कोई भाव मन में बनाते हैं, इसे बनाए रखते हैं, तो यह दया का भाव 'भावदया' कहलाता है।

२९०

संसार केवल 'मान्यता' पर टिका है। तो मुक्ति किससे पाना है ? जो केवल मान्यतास्वरूप पर्दा है, उसे हटाना है। भ्रांति स्वरूप में से 'सम्यक स्वरूप' सरल स्वरूप मान्यता का हो जाना, 'पटांतर' हो जाना है। मान्यता का बदल जाना ही 'पटांतर' कहलाता है। Wrong belief fracture हो गया और Right belief establish हो गया ! भगवान के साथ साक्षात्कार हो गया और 'भगवद्' भाव - भगवद् प्रकाश आलोकित हो गया !

२९१

'प्रवर्त्तमान' का अर्थ 'सदेह' व 'तत्त्वस्वरूप' भी है। 'तत्त्वस्वरूप' अर्थात् 'दादा' स्वरूप तथा 'सदेह' अर्थात् देह में जो 'दादा' स्थापित है, वे सभी। सभी महात्मागण !

२९२

व्यवहार में 'लघुतम' ऐसे ''ज्ञानी-पुरुषों'' की उपस्थिति, भगवान की साक्षात उपस्थिति है।

२९३

यह सारा संसार एक-दूसरे के ऊपर वास्तव में उपकार स्वरूप है।

२९४

एक व्यक्ति धोखा देता है और दूसरा धोखा खाता है। यह कुदरत की भाषा में एक-दूसरे पर उपकार का भाव है।

२९५

'रिलेटिव' रूप में होने वाली हर घटना कुदरती भाषा है, इसके होने में हमारा कोई हाथ नहीं।

२९६

मन की चंचलता तो एक प्रकार की कुदरत की उपकार भावना है। किसलिए ? स्थिर होने के लिए !

२९७

हमारी 'अंतरात्मादशा' प्राप्त अवश्य हुई, परंतु यह अंतरात्मादशा 'अंतरात्मा' भाव में स्थित ('Stable') नहीं हुई। जिसके आगे के परिणामस्वरूप 'बाह्यात्मा' भाव के परिणामों में हम बिल्कुल स्थिर हो सकें।

२९८

'स्वभाव' की समझ का अभाव ही अपनेपन का भाव है।

२९९

''ज्ञानी पुरुष'' की आंख, सामान्य आंखें नहीं। इसमें अपना स्वयं का 'ब्रह्म दर्शन' होता है। और स्वयं का 'ब्रह्म दर्शन' हो जाए तो ठंडक मिल जाए। 'निदिध्यासन' का सम्पूर्ण अर्थ इसी में समाया हुआ है।

३००

प्रकृति अर्थात् मूर्च्छा युक्त पार्वती जी !

३०१

मूर्च्छा दूर होने के बाद हमारी प्रकृति यही साक्षात 'शिवजी की पार्वतीजी' है। इसे 'दिव्य प्रकृति' कहते हैं।

३०२

''ज्ञानी पुरुष'' सभी हिसाब से अच्छी तरह छूट जाते हैं। इससे छूटकर अपने 'शिवस्वभाव' में स्थिर हैं। अर्थात् इनके स्वभाव की स्थिरता के कारण इनकी प्रकृति हमारे लिए 'Helpful' हो रही है।

३०३

'पुण्यानुबंधी पुण्य' अर्थात् मोक्ष के लिए सभी संयोग अनुकूल बना लेना ही यह पुण्य है।

३०४

''कैवल्यज्ञान'' अर्थात् ? पिंड में ब्रह्मांड का दर्शन !

३०५

'समभाव से निपटारा' में 'Barter' नहीं होता। Barter बिना का व्यवहार अर्थात् 'समभाव से निपटारा'। One sided, just give it !

३०६

आत्मा के पक्ष की भाषा, 'Real भाषा' से Relative रूप में काम लेते हैं ? व्यवहार करते हैं ? इस तरह का व्यवहार करते-करते, इस 'व्यवहार' को किए बिना ही हम केवल निहारते रहें, इस निहारने की क्रिया को 'भगवद् लीला' कहते हैं। अर्थात् अपनी लीला स्वयं देखना !

३०७

'ज्ञान' मिलने के बाद, भोग्य के अलावा कुछ नहीं बचता !

३०८

'रिलेटिव भाषा' की प्रतिध्वनि जैसे-जैसे शांत होती जाती है, 'रियल भाषा' की 'Dealing' भी जैसे-जैसे शांत होती है, वैसे-वैसे 'रिलेटिव भाषा' की ज़रूरत भी कम होती जाती है ! और फिर आप शब्द से भी मुक्त होते जाते है, फिर आता है 'सच्चा स्वाद' !

३०९

'Charge' की शक्ति, स्वयं पुद्‌गल की स्वशक्ति नहीं है। यह 'आत्मा' का भाव है।

३१०

'स्वभाव' है, तो 'विभाव' होगा। 'स्वभाव' नहीं तो 'विभाव' कहां से आया?!

३११

'स्वभाव', 'विभाव' में कभी परिणमित नहीं होता। यही सिद्धांत है। तो फिर यह विभाव में कैसे परिणमन हुआ ? चेतन की उपस्थिति से !

३१२

शास्त्रों में कहा गया है कि आत्मा जैसा चिंतन करती है, वैसी ही हो जाती है। आत्मा, मूल चेतन जैसा चिंतन करेगी, वैसी ही हो जाएगी, तो यह चेतन नहीं। क्योंकि चिंतन का गुण चेतन में नहीं है। यह स्वाभाविक गुण नहीं है। तो 'चिंतन' कौन करता है ? चेतन की उपस्थिति बिना, पुद्‌गल, चिंतन स्वरूप में परिणित नहीं होता। उपस्थिति आवश्यक है। अर्थात् चेतन की उपस्थिति, चिंतन तथा स्वाभाविक पुद्‌गल के होने के भाव के कारण, पैदा होने वाली कुछ ऐसी स्थिति, जो स्थिति के परिणामस्वरूप चुंबकीय क्षेत्र, Electrical तथा Magnetic जैसी एक परिस्थिति में, Automatically इन दोनों की उपस्थिति में, बीच में ही रहती है। यह किस पक्ष की है ? दोनों के मेल जो 'परिणाम' हुआ वह 'शंकरजाति' अर्थात् 'भाव्य, भावक, शंकरदोष' है !

३१३

'कषाय' को पुद्गल ने विभाविक भाव से परिणित होने का Main cause कहा है। 'कषाय' क्या है ? दोनों की उपस्थिति में 'शंकरदोष' !

३१४

चेतन की उपस्थिति बिना, विभाविक पौद्गलिक का अस्तित्व होना असंभव है। और सम्पूर्ण संसार विभाविक पुद्गल का अस्तित्व है। यह किससे होता है ? 'स्वाभाविक पुद्गल' से।

३१५

'पुद्गल', पुद्गल के स्वभाव से बाहर नहीं गया है और चेतन, चेतन के स्वभाव से बाहर नहीं गया है ! बीच का खेल ही संसार है !

३१६

'चेतन' एवं 'पुद्गल' दोनों एक दूसरे के साथ जुड़े हुए हैं ? नहीं, बिल्कुल नहीं ! यह तो केवल आभास है; ऐसा क्यो होता है ? केवल 'मान्यता' के कारण। ये दोनों जूडे हुए हैं यह केवल भ्रमित आस्था है। (Pivotal Point is just belief).

३१७

Circle में Centre establish हो गया तो Establsihed centre से Circle centripetally centre में समाहित हो गया।

३१८

'कल्पशक्ति' है इसीलिए व्यवहार चालू, निरंतर चालू रहता है।

३१९

'कल्प' विकल्प हो गया। विकल्प कैसे हुआ ? कल्पशक्ति, शक्तिस्वरुप में पहला Original पुद्गल है। यह वि-स्वरुप में, अपने स्वभाव के विपरीत, परिणमित हुआ है। शक्ति के आधार पर। शक्ति, शक्तिस्वरुप न रही। कल्पशक्ति - यह 'शक्ति' विकल्प स्वरुप में परिणमित होती है। शक्ति का रुपांतर है, इसमें से कोई निकल नहीं सकता, केवल रुपांतर होता है।

३२०

जहां भी परिणाम स्थिर है, वहां से ही 'समझ' प्राप्त हो सकती है।

जय सच्चिदानंद

'नवकलम' का 'निश्चय नियमन'

'दादा भगवान' ने जिनका सतत सेवन-आराधना की वे 'नव-कलम' हैं प्रार्थना, प्रत्याख्यान, तद्रूप होने का कारण बीज ! बैर, अभाव, विषय, जन्म-जन्मांतर भटकाने वाले आंतर-रिपु के स्थान पर सर्व-मैत्रीभाव तथा स्याद्वाद परमाणु की आंतर-प्रतिष्ठा !। यह प्रकृति को सहज एवं उपशमन करने की उत्कृष्ट भाव-उद्घोषणा है !

प्रवर्त्तमान, प्रकट, प्रत्यक्ष ज्ञानी पुरुष परम पूज्य कनुदादाश्री ने परम करुणा-कृपा से प्रदान की 'निश्चय-नियमन' की पांच-कलम निजानंद प्राप्त करने, स्व-संवेदन की सतत अनुभूति करने और विशेष रूप से ज्ञान-दीक्षित महात्माओं के लिए अलौकिक, अप्रतिम वरदान स्वरूप है। पांच आज्ञा से व्यवहार शुद्ध होता है, निश्चय सुदृढ़ होता है, अक्षुण्ण रहता है। और इसी उद्देश्य की परम प्रकाशिका हैं 'निश्चय-नियमन' की पांच कलम !

नौ कलमें

१. हे दादा भगवान !
मुझे किसी भी देहधारी जीवात्मा का किंचित् मात्र भी अहम् न दुभाय, न दुभावाय, एवं दुभावने के प्रति न अनुमोदाय, ऐसी परम शक्ति प्रदान करें।

मुझे किसी भी देहधारी जीवात्मा का किंचित् मात्र भी अहम् न दुभाय, ऐसी स्याद्वाद-वाणी, स्याद्वाद-वर्तन, एवं स्याद्वाद-मनन करने की परम शक्ति प्रदान करें।

२. हे दादा भगवान !
मुझे किसी भी धर्म का किंचित् मात्र भी प्रमाण न दुभाय, न दुभावाय एवं दुभावने के प्रति न अनुमोदाय, ऐसी परम शक्ति प्रदान करें।

मुझे किसी भी धर्म का किंचित् मात्र भी प्रमाण न दुभावाय, ऐसी स्याद्वाद-वाणी, स्याद्वाद-वर्तन, एवं स्याद्वाद-मनन करने की परम शक्ति प्रदान करें।

३. हे दादा भगवान !
मुझे किसी भी देहधारी उपदेशक, साधु, साध्वी, एवं आचार्य का अवर्णवाद, अपराध, अविनय न करने की परम शक्ति प्रदान करें।

४. हे दादा भगवान !

मुझे किसी भी देहधारी जीवात्मा के प्रति किंचित् मात्र भी अभाव, तिरस्कार, कभी भी न कराय, न करावाय एवं करने वाले के प्रति न अनुमोदाय ऐसी परम शक्ति प्रदान करें।

५. हे दादा भगवान !

मुझे किसी भी देहधारी जीवात्मा के प्रति कभी भी कठोर भाषा, तंतीली भाषा न बोलाय, न बोलावाय एवं बोलने के प्रति न अनुमोदाय ऐसी परम शक्ति प्रदान करें।

कोई कठोर भाषा, तंतीली भाषा, बोले तो उसके प्रति मुझे, मृदु, ऋजु भाषा बोलने की परम शक्ति प्रदान करें।

६. हे दादा भगवान !

मुझे किसी भी देहधारी जीवात्मा के प्रति, स्त्री, पुरुष, या नपुंसक, कोई भी लिंगधारी हो, तत्संबंधी किंचित्मात्र भी 'विषय-विकार' संबंधी दोषों, इच्छाओं, चेष्टाओं या विचारों संबंधी दोष न कराय, न करावाय एवं कर्ता प्रति न अनुमोदाय ऐसी परमशक्ति प्रदान करें।

मुझे निरंतर निर्विकार रहने की परम शक्ति प्रदान करें।

७. हे दादा भगवान !

मुझे किसी भी रस में लुब्धता न हो, ऐसी शक्ति प्रदान करें।

समरसी भोजन लिया जाय, ऐसी परम शक्ति प्रदान करें।

८. हे दादा भगवान !

मुझे किसी भी देहधारी जीवात्मा के प्रति प्रत्यक्ष या परोक्ष, जीवंत या मृत, किसी का किंचित् मात्र भी अवर्णवाद, अपराध, अविनय न कराय, न करावाय एवं कर्ता के प्रति न अनुमोदाय, ऐसी परम शक्ति प्रदान करें।

९. हे दादा भगवान !

मुझे जगत कल्याण करने का निमित्त बनने की परम शक्ति प्रदान करें, प्रदान करें, प्रदान करें।

जय सच्चिदानंद

इतना आपको ''दादा'' से माँगना है :

यह प्रतिदिन पढ़ने की चीज़ नहीं है, अंतर में रखने की चीज़ है।

यह प्रतिदिन उपयोगपूर्वक परिपालन की चीज़ है।

इतने पाठ में ही तमाम शास्त्रों का सार समाहित है।

‘निश्चय नियमन’

हे दादा भगवान ! आज के दिन मैं दृढ़ ‘निश्चय’ करता हूँ कि आपने जो ‘दिव्यचक्षु’ दिए हैं, उससे मैं ‘रिलेटिव’ तथा ‘रियल’ व्यूपॉइंट से ही हर चीज़ देख सकूं, ऐसी शक्ति दो, शक्ति दो, शक्ति दो।

हे ‘दादा भगवान’ उदयकर्म आज फल देने के लिए तैयार हुआ है, यह प्रमाण रूप में ‘व्यवस्थित शक्ति’ संयोग एकत्र करेगा, लेकिन मेरे पिछले अज्ञान की चिकनाहट के कारण, ऐसे संयोगों में ‘मेरा’ होने का भाव ‘अपनापन’ का भाव जगाएगा, ऐसा मानने के लिए प्रेरित करेगा, परंतु ‘आज्ञाधीन’ भाव से मेरा यह दृढ़ निर्णय ‘निश्चय’ है कि ‘शुद्धात्मा स्वभाव’ से मैं किसी भी क्रिया का कर्त्ता नहीं हूँ, मैं ‘अकर्त्ता’ हूँ और ‘व्यवस्थित शक्ति ही कर्त्ता है’, ‘व्यवस्थित शक्ति’ में रुकावट न बनूं, हे ‘दादा भगवान’, हे शुद्धात्मा भगवान, मुझे ऐसी शक्ति दो, शक्ति दो, शक्ति दो। संयोगों की वीतराग दृष्टि से देखने की शक्ति दो, शक्ति दो, शक्ति दो।

अब तो एक ही लक्ष्य है कि जो भी Account feed हुए होंगे, हर दिन सभी Accounts का ‘फ़ाइलों के समभाव से निपटारा’ करना है। ‘दादा’! ऐसी शक्ति आप दो !

अब तो ‘शुद्धात्मा’ का खाता (Account) ही, मेरा खाता है, आपने जो ‘दिव्यचक्षु’ दिए हैं, उससे ही ‘देखने-समझने’ की शक्ति दो, शक्ति दो, शक्ति दो और देखने-समझने का चूक मिल जाए तो Shoot-on-sight प्रतिक्रमण करने की शक्ति दो, शक्ति दो, शक्ति दो ! अगर मुझसे प्रमादवश, अजागृति के कारण ‘देखने-समझने’ का रह जाए तो यथार्थ आलोचना, प्रतिक्रमण एवं प्रत्याख्यान करने की शक्ति दो, शक्ति दो, शक्ति दो।

‘मेरा स्वरूप द्रव्य, गुण, अवस्था से शुद्ध है’ ! इसे मैं अनुभव में अपना सकूं, ऐसी शक्ति दो, शक्ति दो, शक्ति दो। मेरी हर सांस ‘दादा भगवान’ के ‘आज्ञाधर्म’ से ही उपयोग हो, ऐसी शक्ति दो, शक्ति दो, शक्ति दो! हमारा ‘आज्ञाधर्म’ - भक्ति मन, वचन एवं काया की एकता के दृढ़ निर्णय ‘निश्चय’ की चरम सीमा की पूर्णता को प्राप्त हो, ऐसी शक्ति दो, शक्ति दो, शक्ति दो!

परमपूज्य श्री कनुदादाजी, यू एस ए-२००२